केस स्टडी

विद्या भवन बुनियादी शिक्षा : एक अध्ययन

रजनी द्विवेदी

विद्या भवन में बुनियादी शिक्षा की कहानी बड़ी दिलचस्प रही है। विद्या भवन में किए गए प्रयोगों के किस्से बिखरे–बिखरे सुनने को मिलते थे। हाल ही में रजनी द्विवेदी ने अपनी एम. ए. की पढ़ाई के दौरान केस स्टडी की, जिसके तहत उन्होंने साक्षात्कार किए और दस्तावेजों का अध्ययन किया। लेखिका ने पता लगाने की कोशिश की कि आखिर विद्या भवन बुनियादी मदरसे में कक्षाओं का स्वरूप कैसा होता था। क्या कोई लिखित पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें थीं? स्कूल में भाषा कौनसी थी? स्कूल और समुदाय का जुड़ाव किस प्रकार का था? मदरसे का स्वरूप मौजूदा स्कूलों से किस प्रकार भिन्न था? उस केस स्टडी में उन चुनौतियों की भी झलक मिलती हैं, जिनसे विद्या भवन बुनियादी मदरसा जूझ रहा था।

अध्ययन का स्रोत : (अ) शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के साथ अनौपचारिक साक्षात्कार/बातचीत

1. गणेशलाल जैन (विद्या भवन बुनियादी मदरसे के प्रथम सत्र के विद्यार्थी जो बाद में मदरसे के प्रधान भी रहे)
2. मदरसे के प्रथम प्रधानाचार्य (दयाल चन्द्र सोनी) के प्रकाशित आलेख
3. स्कूल की लेखा पुस्तकें
4. 1948 एवं 1955 में 7 वर्षीय पाठ्यचर्या पूर्ण करने वाले विद्यार्थियों की अंकतालिकाओं का रिकॉर्ड।

महात्मा गांधी द्वारा बुनियादी शिक्षा का जो विचार उभारा गया, उसमें राष्ट्रीय आंदोलन के दूसरे अनेक साथियों के विचार भी सम्मिलित थे। यह योजना 'बुनियादी शिक्षा', 'नई तालीम' और 'वर्धा स्कीम' के नाम से जानी जाती है। शिक्षा की इस योजना ने पूर्व औपनिवेशिक भारत में आकार लिया और इसका विकास अक्टूबर 1937 में वर्धा में आयोजित गांधी सहित अन्य विचारकों के विचारों पर आधारित सम्मेलन में हुआ। डॉ. जाकिर हुसैन, जो उस समय जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में प्राचार्य थे, के नेतृत्व में एक समूह को यह ज़िम्मेदारी दी गई कि वे इसके लिए एक विस्तृत योजना बनाए तथा इसे सबके साथ साझा करें।

बुनियादी शिक्षा की योजना बनाई गई, उसमें संशोधन भी हुए और बहुत से लोगों ने इसे स्वीकार किया। इस विचार पर आधारित अनेक विद्यालय पूरे भारत में खोले गए। इन विद्यालयों का फ़ोकस बुनियादी शिक्षा पर था। इसके आधारभूत सिद्धांत इस प्रकार थे–

1. 7 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा।

2. बच्चों को उनकी मातृभाषा में पढ़ाया जाए।

3. बौद्धिक एवं शारीरिक कार्य एक दूसरे के पूरक हैं और अगर हमारा उद्देश्य, बच्चे का सर्वांगीण विकास है, तो विभिन्न विषयों (गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, भाषा) को उद्योग के माध्यम से या उनसे जोड़कर पढ़ाना चाहिए। इससे बच्चों को अकदामिक अवधारणाएं ज़्यादा अच्छे तरीक़े से समझने में मदद मिलती है।

4. स्कूल में इस सिद्धांत का ज़ोर समुदाय के साथ संबंधों पर भी था। पूर्व औपनिवेशिक भारत में ग्राम पंचायतें थीं, जिनके पास प्रशासकीय शक्ति के साथ–साथ ग्राम के विकास की ज़िम्मेदारी भी थी। विकास और शासन के ब्रिटिश नज़रिए ने जहां इस व्यवस्था को ख़त्म करने की कोशिश की, वहीं महात्मा गांधी का विचार था कि कोई देश तभी तरक़्क़ी कर सकता है, जब इसकी सबसे छोटी इकाई (गांव) तरक़्क़ी करे। शिक्षा और विद्यालय गांव के नेतृत्व और नियंत्रण में होने चाहिए। यह भी महसूस किया गया कि अगर बच्चों को समुदाय के साथ काम करने के अवसर मिले, तो वह उन्हें समुदाय और उनकी समस्याओं को समझने में मदद करेगा।

पूर्व औपनिवेशिक काल में बुनियादी शिक्षा के शुरुआती समय में स्थापित विद्यालयों में से विद्या भवन बुनियादी विद्यालय भी एक था। ये स्थापित विद्यालय बुनियादी शिक्षा के सिद्धांतों पर केंद्रित थे। हालांकि हर एक विद्यालय के संसाधन, स्थितियां और प्रकृति अलग–अलग थी पर इन सबमें नज़रिए की एकरूपता थी।

बुनियादी मदरसे का संक्षिप्त इतिहास

वर्तमान में इस मदरसे का नाम विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय है। विद्या भवन के संस्थापक डॉ. मोहनसिंह मेहता के प्रयासों से 23 अप्रैल 1941 में विद्या भवन बुनियादी मदरसे (विद्यालय) की स्थापना हुई। विद्यालय की नींव श्री टी.वी. राघवाचार्य (तत्कालीन अध्यक्ष, मेवाड़ राजघराना) द्वारा रखी गई और इसका उद्घाटन डॉ. जाकिर हुसैन द्वारा किया गया। यह विद्यालय 11 बच्चों व एक शिक्षक के साथ, एक प्रयोग की तरह शुरू हुआ। जैसा कि दयालचंद्र सोनी (विद्यालय के पहले प्रधानाचार्य) ने अपने आलेख में भी ज़िक्र किया है कि हम ''बुनियादी शिक्षा पर श्रद्धापूर्वक प्रयोग करके देखेंगे।''[1]

यह विद्यालय एक पहाड़ी (रायमगरी) की तलहटी में उदयपुर शहर से लगभग 7 से 8 किमी की दूरी पर रामगिरि गांव के पास स्थित है। उस समय (1943 में) विद्यालय भवन बहुत बड़ा तो नहीं था पर वहां शिल्प और हाथ के काम के लिए काफ़ी जगह थी। न केवल उदयपुर के आसपास के गांवों जैसे रामगिरि, बेदला, चिकलवास लोयरा, पालड़ी आदि से बच्चे विद्यालय में आते थे, बल्कि डूंगरपुर, आसपुर, खेरवाड़ा आदि स्थान जो 70–80 किमी दूरी पर थे, वहां के बच्चे भी विद्यालय में भर्ती होते थे। शुरुआती सालों में बच्चों की संख्या बहुत कम थी जैसे लगभग 10 बच्चे प्रत्येक कक्षा

में थे। जैसाकि नीचे तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका
विद्यालय में बच्चों की संख्या

वर्ष	प्रवेश लेने वाले छात्रों की संख्या	उपस्थिति प्रतिशत में
1944–45	60	78
1945–46	68	75
1946–47	72	70
1947–48	69	75
1948–49	73	79
1949–50	65	77
1950–51	65	84
1951–52	82	80
1952–53	90	80

1951–52 में रामगोपाल पांडे की रिपोर्ट पर आधारित

बच्चों की कम संख्या की समस्या को दयालचंद्र सोनी ने अपने कार्यकाल के दौरान हर आलेख में इंगित किया है। ''चाहते हुए या न चाहते हुए भी, किसानों को अपने बच्चों की मदद लेनी ही पड़ती है। तब, जो किसान ग़रीब होने के साथ क़र्ज़दार भी थे, बच्चों को मदरसे भेजने में उनकी मजबूरी का अनुमान लगाना कठिन नहीं है।''[2]

''नया बुनियादी मदरसा किसी अकेले बड़े गांव के लिए खोला जाना चाहिए, जहां काफ़ी बच्चे मिल सकें।''[3] रामगोपाल पांडे (1951–52) के अनुसार ''कुछ सालों तक विद्यालय उच्च जाति हिन्दुओं में ज़्यादा प्रचलित नहीं था क्योंकि यहां भील बच्चों को भी भर्ती किया जाता था।''[3]

हालांकि विद्यालय में नामांकन के लिए 7 से 14 वर्ष तक की उम्र निर्धारित की गई थी, पर पहले सत्र में और बाद के कई सत्रों में, कई बच्चे ऐसे थे जिनकी उम्र कक्षा के हिसाब से ज़्यादा होती थी। ''आज की परिस्थिति में ख़ानगी मदरसों के लिए ठीक सात से चौदह वर्ष के छात्र पाना अत्यन्त कठिन है। अस्तु बड़ी उम्र के विद्यार्थियों को भी भर्ती करना पड़ता है।''[4]

विद्यालय की पाठ्यचर्या

समय के साथ–साथ विद्यालय की पाठ्यचर्या में बदलाव करना ज़रूरी होता है। कभी बदलाव स्कूल के कुछ जागरूक प्रयासों के चलते और कभी सामुदायिक अपेक्षा आदि अन्य कारकों के कारण हुए। इस कारण विद्या भवन बुनियादी मदरसे की पाठ्यचर्या भी समय के साथ बदलती रही।

उपलब्ध स्रोतों से प्राप्त जानकारी के आधार पर मैंने निम्न समयावधियों में विद्यालय की पाठ्यचर्या को समझने का प्रयास किया–

1941 से 1955

गणेशलाल जैन, जो कि विद्यालय के पहले छात्र थे, ने भी साक्षात्कार में उल्लेख किया कि 1947 तक विद्यालय में 7 वर्षीय पाठ्यचर्या लागू थी। विद्यालय के पहले और दूसरे सत्र के बच्चों को अगस्त 1955 में पहली बार अंकतालिकाएं दी गईं और सभी अंकतालिकाओं में 7 वर्षीय पाठ्यचर्या का उल्लेख है। विद्यालय समय के दौरान, विद्यार्थी विद्यालय में चलने वाली कृषि, कताई–बुनाई और सुथारी उद्योग की आर्थिक गतिविधियों में कार्य करते थे। विद्यार्थियों को उनके काम की मात्रा और योगदान के फलस्वरूप प्राप्त आय के अनुपात में भुगतान किया जाता था। प्रत्येक कक्षा द्वारा कमाई गई (शुद्ध आय) राशि को उस कक्षा के खाते में जमा करवाया जाता था। 1950 से 54 की विद्यालय की लेखा पुस्तकों में भी कक्षा 7 तक की कक्षाओं का उल्लेख मिलता है।

हालांकि रामगोपाल पांडे की एक रिपोर्ट (1952–53) कक्षा 8 का भी हवाला देती है। 'विद्यालय के द्वारा

पाठ्यचर्या के विस्तार की ज़रूरत महसूस की गई।' यह बात दयालचंद्र सोनी के द्वारा आर्यनायकम् से लिए गए साक्षात्कार में भी सामने आई, जिसमें उन्होंने पूछा कि ''क्या आप चाहेंगे कि बुनियादी तालीम का अभ्यास 7 वर्षों की बजाय 8 वर्षों का कर दिया जाए। क्योंकि ये आम अनुभव है कि 7 वर्ष का अर्सा बच्चों की उच्च कोटि की शिक्षा के लिए कम पड़ता है।'' (आर्यनायकम् के साथ दयालचंद्र सोनी की बातचीत) विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय में संग्रहित लेखा पुस्तकों, अंक तालिकाओं और प्रधानाचार्य के आलेखों का अवलोकन करके और गणेशलाल जैन के साक्षात्कार से यह तथ्य ज्ञात हुआ।

दैनिक गतिविधियां

विद्यालय के दिन की शुरुआत विद्यालय परिसर, कक्षाओं और शौचालयों आदि को साफ़ करने, पीने के पानी के मटके भरने, छोटे बच्चे जो खुद नहीं नहा सकते, उन्हें नहलाने और पौधों को पानी देने जैसी गतिविधियों के साथ होती थी। बच्चों के अलग–अलग समूह, अलग–अलग कामों के लिए ज़िम्मेदार होते थे। हर समूह का नेतृत्व एक विद्यार्थी करता था जिसे मुखी कहा जाता था। हर समूह में कक्षा 1 से 7 तक के बच्चे व दो शिक्षक होते थे। हर समूह को बारी–बारी से प्रत्येक काम करना होता था। प्रत्येक शनिवार को समूह के मुखी या नेता को गत सप्ताह की गतिविधियों की रिपोर्ट देनी होती थी और अगले सप्ताह के लिए अपने समूह के नए काम की ज़िम्मेदारी लेनी होती थी। इन सारे कार्यों के बाद विद्यालय में विद्याथियों के द्वारा (कक्षावार) नियमित रूप से अवधि तक प्राथमिक चिकित्सा सहकारी दूकान, कताई–कोठार औज़ार घर एवं बाल पुस्तकालय का संचालन किया जाता था, जिन्हें 'नियोजिता सेवा' कहा जाता था। यह सेवा 20 मिनिट की अवधि की होती थी। और ये सभी काम प्रार्थना सभा के पहले होते थे। प्रार्थना सभा में सप्ताह के दिन (वार) के आधार पर अलग–अलग प्रार्थनाएं, रामायण पाठ, अनमोल वचन (महान् लोगों के विचार) कहानी कथन (शिक्षक व विद्यार्थी द्वारा) के कार्यक्रम होते थे। प्रार्थना सभा में ही विद्यार्थियों की उपस्थिति ली जाती थी। सभी कक्षाओं के लिए एक ही उपस्थिति रजिस्टर था।

विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय में उपलब्ध रिपोर्टों और लेखापुस्तकों के अध्ययन से विद्यालय के समूहों, छात्र पंचायत, गांव दलों, पंचायत डे आदि के बारे में जानकारी मिलती है। छात्र पंचायत में– सभापति, उपसभापति, न्यायमंत्री, श्रम मंत्री, उद्योग मंत्री आदि पदाधिकारी होते थे। छात्र पंचायत के ये पदाधिकारी छात्रों द्वारा चुने जाते थे।

उद्योग का काम

विद्या भवन बुनियादी मदरसे में प्रमुख रूप से कृषि, कताई–बुनाई व सुथारी (बढ़ईगीरी) के उद्योग चलते थे। इन उद्योगों को तत्कालीन समय की सामाजिक ज़रूरतों, प्राकृतिक वातावरण एवं विद्यालय में उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रखते हुए चुना गया था। विद्यालय में प्रार्थना सभा कार्यक्रम के तुरंत बाद उद्योग कार्य की कक्षाएं होती थीं। इन उद्योग के कालांशों के बाद विषयों की कक्षाएं होती थीं। जैसाकि गणेशलालजी ने साक्षात्कार में कहा, ''छोटे बच्चों से कृषि संबंधी काम नहीं करवाया जाता था।'' कृषि कार्य कक्षा 4 से शुरू होता था। सबसे छोटी कक्षाएं (कक्षा 1 से 3 तक) विषयगत कालांशों के बाद तकली पर सूत कातने का कार्य करती थीं। अकादमिक विषय उद्योग के माध्यम से पढ़ाए जाते थे। इसीलिए कई बार विषयाध्यापन उद्योग कार्य के दौरान फ़ील्ड में

होता था। जैसे मिट्टी के प्रकार, ज़मीन या क्षेत्र मापना, क्षेत्रफल निकालना, फ़सल को तौलना, उर्वरकों और कीटनाशकों के बारे में जानना आदि।

साल के आख़िर में प्रत्येक कक्षा और बच्चे की कमाई (लेखापुस्तकें 1948, 50, 54, 65) भी इस तथ्य को और पुख़्ता करती है कि हर कक्षा का हर बच्चा किसी एक उद्योग से जुड़ा था। हालांकि प्रत्येक कक्षा की वास्तविक समय सारिणी क्या थी और कितना समय उद्योग की कक्षा और अकादमिक विषयों के अध्ययन पर दिया जाता था, स्पष्ट नहीं था।

इस बुनियादी विद्यालय में खेती (कृषि) के लिए ज़मीन उपलब्ध थी और छात्र इसमें मौसमी सब्ज़ियां, और विभिन्न फसलें उगाते थे जैसे– गन्ना, मक्का, कपास, गेहूं, जौ, ज्वार, धनिया, लहसुन आदि। छात्र कृषि कार्य के अंतर्गत निराई–गुड़ाई, सिंचाई, खेत की जुताई और ऐसे ही कामों में अपनी सेवाएं प्रदान करते थे। उद्योगों के कामों के लिए प्रत्येक कक्षा का खाता था। इस खाते में उद्योगों में बच्चों द्वारा किए गए कार्य के शुद्ध लाभ (कमाई) को जमा किया जाता था। शिक्षक के निर्देशन में बच्चों का एक समूह इन खातों को संचालित करता था। इस काम में बच्चों की कक्षा को कृषि के लिए दिए गए बीज, उपकरण आदि का ब्यौरा होता था। इसी तरह अन्य उद्योगों में भी इसी तरह के विवरण का उल्लेख होता था।

इन उद्योगों में हुई बच्चों की कमाई को उनके निजी खातों में, जमा करवा दिया जाता था। विद्यार्थियों के ये निजी खाते विद्यालय में ही होते थे और ख़ुद विद्यार्थियों द्वारा संचालित किए जाते थे। इन निजी खातों की राशि का उपयोग विद्यार्थी कॉपी–किताब ख़रीदने के लिए या नाश्ते के लिए करते थे। इस संदर्भ में यदि कोई विद्यार्थी अध्ययनरत कक्षा को बीच में ही छोड़ता था, तो उसके द्वारा कमाई हुई राशि को छात्र पंचायत में जमा कर दिया जाता था, जिसका बाद में ग़रीब छात्रों के भोजन, कॉपी–किताबें या कपड़े आदि को उपलब्ध करवाने में इस्तेमाल किया जाता था।

दयालचंद्र सोनी ने अपनी बुनियादी शिक्षा की तालीम जामिया मिलिया इस्लामिया से प्राप्त की थी। उस समय के उनके द्वारा लिखे, अनेक आलेख विद्या भवन बुनियादी मदरसे की कहानी को बयां करते हैं।

अनेक शिक्षाविदों और राजनीतिज्ञों ने बुनियादी शिक्षा के इस विचार की खुलकर सराहना की। यद्यपि इन लोगों को भी यह स्पष्ट नहीं था कि बुनियादी शिक्षा का क्या स्वरूप हो सकता है और इसके लिए विद्यालयों में इसकी क्या जगह होगी। जैसा कि दयालचंद्र सोनी ने एक मुहावरे या लोकोक्ति के रूप में कहा है कि :

''अभी हम तीतर के नाम पर उस झाड़ी को पीट रहे हैं, जिसके विषय में हमें यक़ीन है कि तीतर उसी में है... उस तालिमी तीतर की शक्लो–सूरत कैसी होगी, इस बारे में हमारी क्या कल्पनाएं हैं, अभी से निश्चयपूर्वक कुछ कह देना बुद्धिमानी नहीं होगी। बहुत संभव है कि उसका स्वरूप मौजूदा स्कूलों से जुदा हो।''[5]

अकादमिक विषय अध्ययन

बुनियादी मदरसे के इस विद्यालय में हिन्दी, गणित, समाजशास्त्र, सामान्य विज्ञान और चित्रकला विषय पढ़ाए जाते थे। इसमें उद्योग पर फ़ोकस रहता था और शिक्षकों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे विषय शिक्षण को उद्योग के इर्द–गिर्द ही बुनें। इस संदर्भ में विद्यालय में एक कक्षा एक शिक्षक की परंपरा चलती थी ताकि शिक्षक विभिन्न विषयों

तथा उद्योग में क्या पढ़ाया और क्या करवाया जाए, दोनों को जोड़ सकें। इस बुनियादी विद्यालय में अक्सर बच्चे कताई करते समय, अपने संख्या ज्ञान को विकसित करते थे, जैसे तकली के पहिए के घूमने की गिनती करना, अपने द्वारा बनाई गई पूनियों को गिनना, अनुमान लगाना कि इतनी पूनियां बनाने के लिए कितनी डूंडियों (कपास को साफ़ कर बनाया गया गोला) की ज़रूरत होगी आदि। इसी तरह विज्ञान भी पढ़ाया जाता था। शिक्षक मिट्टी, जल, उर्वरकों, उनके गठन और कीटनाशकों आदि के बारे में विद्यार्थियों के साथ चर्चा करते थे और विद्यार्थियों से अपेक्षा रहती थी कि जो चर्चा हुई है, उसे वे लिख लें। गणेशलाल जैन से हुए साक्षात्कार के अनुसार यहां विद्यालय को समुदाय के जीवन से जोड़ने का भी प्रयास होता था। विद्यार्थियों के समूह अक्सर गांव के भ्रमण को जाते थे, जहां वे लोगों से स्वास्थ्य और स्वच्छता के साथ–साथ समाज में फैली कुरीतियों पर भी बात करते थे। गांधी जयंती, तुलसीदास जयंती, सूरदास जयंती, बसंत पंचमी आदि कार्यक्रम विद्यालय के बजाए गांव में मनाए जाते थे।

इन कार्यक्रमों में विद्यार्थियों से यह अपेक्षा रहती थी कि वे तुलसीदासजी और सूरदासजी की रचनाएं एकत्रित करें, उनके अर्थ को समझें, उन पर बात कर सकें और उनके बारे में समुदाय के समक्ष सांस्कृतिक कार्यक्रमों को प्रस्तुत कर सकें। विद्यालय में हर वर्ष 2 अक्टूबर को गांधी मेला आयोजित किया जाता था जिसमें बच्चे गांधी के जीवन से संबंधित कार्यक्रमों को प्रस्तुत करते थे। इस दौरान प्रदर्शनी भी लगाई जाती थी।

विद्यालय में भाषा और गणित सिखाने के बारे में गणेशलाल जैन से यह पूछा गया कि शुरुआती कक्षा में भाषा और गणित शिक्षण की शुरुआत कैसे की जाती थी और क्या बच्चे उस स्तर पर संख्याओं को लिख, पढ़ और समझ पाते थे। इस पर उनका कहना था कि सब कुछ परंपरागत तरीके से होता था। शुरुआत में इस तरीक़े में वर्णों और अंकों का उच्चारण करने, याद करने तथा बाद में याद करने और उसे बार–बार लिखने के अभ्यास शामिल थे।

पाठ्यपुस्तकों का उपयोग

यद्यपि विद्यालय में शिक्षकों के लिए किताबें थीं परंतु यह स्पष्ट नहीं है कि वहां बच्चों के लिए भी किताबें थीं या नहीं। ऐसा लगता है कि उस समय विद्यालय इस मुद्दे से जूझ रहा था कि बुनियादी तालीम प्रदान करने के लिए हमारे पास किस तरह की पाठ्यपुस्तकें होनी चाहिए। उपलब्ध पाठ्यपुस्तकें तो नई तालीम के लिए उपयुक्त नहीं थीं। क्योंकि उनमें उद्योग के लिए जगह नहीं थी, तो ऐसी स्थिति में विषयों का उद्योग कार्य के साथ जुड़ाव कैसे किया जाए, यह प्रमुख समस्या हमारे सामने थी। दूसरी समस्या, भाषा की थी। बुनियादी शिक्षा के सिद्धांत के अनुसार, बच्चे की शिक्षा का माध्यम उसकी अपनी मातृभाषा होनी चाहिए। इस विद्यालय में भी मातृभाषा का विकल्प रखा गया था। किन्तु विद्यालय में पढ़ाने की भाषा बच्चों की अपनी भाषा नहीं होती थी और बच्चों के लिए हिंदी भी यह अन्य भाषाओं की तरह दूसरी भाषा ही होती है। इस तरह विद्यालय में पढ़ने में जो भाषा प्रयोग में लायी जाती है वह न तो सामान्य भाषा होती है और न ही क्षेत्रीय भाषा होती है। इस मुद्दे पर राष्ट्रवादी उत्साह देखते हुए हिंदी को मातृभाषा माना गया और अंग्रेज़ी को छोड़ दिया गया था।

बुनियादी शिक्षा पाठ्यचर्या के लिए पाठ्यपुस्तक होनी चाहिए, पर एक शंका यह है कि अगर पाठ्यपुस्तक होती है, तो क्या वह बुनियादी शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करेगी, जैसे कि उसमें विद्यालय के अनुभवों को जोड़ना और शिक्षा के मुख्य

अवधारणात्मक सरोकारों को सम्मिलित करना। ''शिक्षकों से पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकों के संदर्भ में विषयों और उद्योगों को जोड़ते हुए पाठ्यचर्या तैयार करने की अपेक्षा थी।''[6]

चुनौतियां

बुनियादी शिक्षा की सबसे बड़ी चुनौती यह समझना है कि इसका अर्थ क्या है और इसे स्कूलों में कैसे लागू किया जाए। यह मदरसा एक प्रयोग के आधार पर शुरू किया गया था और इसने बुनियादी शिक्षा के अपने संदर्भ निकालने का प्रयास किया। कई ऐसे तरीक़े इस विद्यालय ने अपनाए जैसे– विद्यार्थियों का विद्यालय के बाहर जाकर काम करना, समुदाय की मदद करना, कमाई करना आदि जो बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धांतों में मौजूद नहीं थे। लेकिन यह प्रयोग अभिभावकों में यह विश्वास पैदा कर सका कि बच्चे पढ़ते हुए भी उनकी मदद कर सकते हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो इसका सीधा असर बच्चों की उपस्थिति पर होता। विद्यालय में पाठ्य विषय और उद्योगों के बीच जुड़ाव या समवाय स्थापित करना, हमारा दूसरा, मुख्य सरोकार था। इससे जुड़ा अन्य मुद्दा विद्यालय में ऐसे सक्षम शिक्षकों की उपलब्धि थी, जिन्हें विषय और उद्योग दोनों की समझ हो, ताकि वे इन दोनों को आपस में गूंथ सकें। ''दस्तकारी या उद्योग के ज़रिए तालीम देने वाले शिक्षक को स्वयं शिक्षित होने के साथ ही उसे चुनी हुई दस्तकारी में भी दक्ष होना चाहिए। इसके बिना वह न तो दस्तकारी सिखा सकता है और न ही पढ़ा सकता है। और इसके बिना वह दोनों में समन्वय तो हर्गिज़ नहीं कर सकता... बुनियादी तालीम का पथ अभी प्रशस्त नहीं हो पाया है। इस दिशा में योग्य शिक्षकों की अनिवार्य आवश्यकता है।''[7]

''इस विद्यालय ने आर्थिक मुश्किलों का भी सामना किया। विद्यालय में विभिन्न उद्योगों को चलाने के लिए संसाधन जुटाने, पाठ्यपुस्तकों की ज़रूरत को पूरा करने के लिए उनके बजाए संदर्भ पुस्तकों को जुटाने तथा पुस्तकालय को व्यवस्थित करने के लिए काफ़ी सारे निवेश की ज़रूरत थी। एक सामान्य विद्यालय को स्थापित करने की तुलना में बुनियादी तालीम के विद्यालय को स्थापित करने में कई गुणा अधिक खर्चा आता है।''[8]

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर में कार्यरत।
अंग्रेज़ी से अनुदित– कामिनी उपाध्याय,विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर में कार्यरत।

संदर्भ

1,2,5, सोनी, दयालचंद्र, बालहित 1943, विद्या भवन प्रकाशन

3,4,7 सोनी, दयालचंद्र, बालहित 1944, विद्या भवन प्रकाशन

6,8 सोनी, दयालचंद्र, बालहित 1945, विद्या भवन प्रकाशन